International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 207-208

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 207-208
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-03-2022
Accepted: 04-04-2022

मौ0 इरफान खां
सहायक प्रवक्ता, यासीन मेव डिग्री कालेज, गुरूग्राम विश्वविधालय नूँह हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
मौ0 इरफान खां
सहायक प्रवक्ता, यासीन मेव डिग्री कालेज, गुरूग्राम विश्वविधालय नूँह हरियाणा, भारत

वैदिक साहित्य मे नीति काव्य का निवेश

मौ0 इरफान खां

प्रस्तावना

वेदों मूल ;सहिताओंद्ध , ब्राहमणग्रन्थों , आरण्यकों तथ उपनिषदों के समुदार को ष्वैदिक साहित्यष् कहते है। इनमे सहिताएं प्राचीनतम और प्रायः छन्दोबद्व है। भारतीय वाड्मय का उपक्रम इन्ही से होता है। चारो सहिताओ मे बीस सहस्त्र के लगभग मन्त्र है, जिनमे से अधिकतर मन्त्रो का सम्बध स्तुति, प्रार्थना, उपासना यज्ञादि धार्मिक कृत्यो से है। शेष मन्त्र लोक व्यवहार आदि से सम्बद्व है और वही हमारे विवेचन के विशिष्ट विषय है। नीति के सभी प्रकार सहिताओं मे बीजरूप मे उपलब्ध होते है।

मनुष्य का व्यक्तित्व शरीर, मन तथा आत्मा के सयोगं से निर्मित होता है। यो तो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति दीर्घजीवी , हृष्ट–पुष्ट, ज्ञानवान तथा सदाचारी होने का उद्योग करता है परतुं प्राचीन आर्य तो इस विषय मे विशेष प्रयत्नशील थे। कारण यह कि वे अपने आदिम निवासस्थान से प्रस्थान कर दल– बद्व रूप मे भारत मे पहुॅचे थे। यहा पर पावॅ जमाने के लिए उन्हे बहुसख्यक आदिवासियों से अहनिर्श लोहा लेना पडता था। उन सग्रमों मे विजय लाभ की आशा तभी सम्भव थी जब व शाररिक व मानसिक तथा चारित्रिक बल मे परिपंथियों से बढ– चढकर हो। कदाचित् यही कारण है कि वेदो मे मृत्यू निवारण की, दीर्घायु – प्राप्ति की, रोग नाश की, स्वास्थय लाभ तथा तनपुष्टि की अनेकानेक प्रार्थनाएं ही नही मिलती, उपदेश भी उपलब्ध होते है। वे लोग मध्यकालीन लेखको के समान शरीर को मलागार तथा जीवन को निस्सार नही समझते थे। वे देह को देवताओ की पुरी तथा परम ज्योती के दर्शन का मन्दिर मानते थे –

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्यः कोशा स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।

यह शरीर देवताओ की अयोध्यापुरी है जिसमे आठ चक्र और नवद्वार है। उसमे सुखदायक स्वर्णमय कोश है जो प्रभू की ज्योति से व्याप्त है।

ज्ञान उनके जीवन का अनिवार्य अगं था। जहॉ मेधा, बुद्वि तथा वाणी के विकास के लिए वेदों मे अनेकत्र प्रार्थनाए की गई है वहां ज्ञान के स्वरूप, महत्व तथा अधिकारियों के निरूपण से ऋग्वेद का ज्ञानदेवताक सूवत परिपूर्ण है। उसमे मित्रों के मानसिक विकास के तारतम्य का उल्लेख यों किया गया है– मित्रों के नयन और कान तो समान होते है परतुं मन की दौड पृथक– पृथक;ज्ञान की दृष्टि सेद्ध कुछ उन सरोवरों के समान है जिनका जल कटि तक पहुंचता है। कुछ उनके, जिनका मुख तक और गहेरों सरोवरों के, जिनमे मनुष्य खुला स्नान कर सकता है।

वे आत्मा की अमरता तथा कर्म– फल के सिद्वान्त के विश्वासी थे। उनके विचारानुसार आत्मा की आवाज के विपरीत आचरण करने वाले लोग मृत्यू के पश्चात प्रकाश – रहित लोको का प्रस्थान करते है। सब बुराईयों के त्याग के सम्बध मे वेद की काव्यमयी भाषा दृष्टवय है–

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ।।

अर्थात जैसे सूर्य अन्धकार से मुक्त हो जाता है, रात्रि को छोड देता है और उषाकालिन प्रकाशों को भी त्याग देता है, वैसे ही मै सारी बुराईयों को हिसंक– कृत हिसां को, छोडता हूॅ। जैसे हाथी धूल को उडा फैकतां है वैसे ही मै पाप को। सार यह कि दीर्घ जीवन, पुष्ट शरीर, उज्ज्वल मस्तिष्क तथा पवित्र चरित्र वैदिक युग की वैयक्तिक नीति थी। जीवन की सुख्मयता अधिकाशं मे पारिवारिक शान्ति पर अवलम्बित है।

पति तथा पत्नी का, सन्तान तथा जनकों का, भाईयों तथा बहनों का पारस्परिक वैमनस्य गृहस्थी को नरक बना दिया करता है। उस अवाछंनीय स्थिति से बचाव के लिए वेद पारिवारिक नीति का ऐसे प्रतिपादन करता है– तुम्हारा पारस्परिक प्रेम ऐसा हो जैसे गाय का नव–जात वत्स से। पुत्र पिता का आज्ञानुवर्ती तथा माता से सामंजस्य रखनेवाला हो। पति – पत्नी के प्रति मधूर तथा शान्त वाणी का प्रयोग करने वाली हो। न भाई– भाई से द्वेष करे, न बहन– बहन से । लक्ष्य तथा आचार व्यवहार समान रखते हुए भली वाणी का व्यवहार करो।

समानी प्रपा सह दो🕐न्नमागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यचो🕐ग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।।

तुम्हारे जलपान– स्थान समान होः तुम्हारा भोजन मिलकर हो, तुम्हे समान स्नेहपाश मे बाधंता हूँ। ऐसे मिलकर अग्नि की सपर्या करो जैसे कि अरे रथचक्र की नाभी के चारों ओर मिले हुए रहते है।
समाज मे मित्र तथा उदासीन ही लोग नही होते, शत्रु भी होते है। उनके दमन के लिए तेज अनिवार्य होता है, उसकी कामना इन शब्दा मे की गई है–
सिहं मे, व्याघ्र मे, चीते मे, ब्राहमण मे, सूर्य मे जिस शक्ति का प्रकाश हो रहा हो वही मेरे अन्दर भी हो। शासक गुण मे, दुन्दुभि की तुमुल– ध्वनि मे, घोडे की हिनहिनाहट मे, पुरूष की ललकार मे जिस शक्ति का प्रकाश हो रहा है, वही मेरे अन्दर भी हो। इसी प्रकार अथर्ववेद के छठे काण्ड के 65–66 सूक्त शत्रु के विद्रावण तथा सहांर की भावनाओं से पूर्ण है।
लोकोपकारी सदाचारी विद्वान अतिथियों के सम्बध मे वेद इस नीति का विधान करता है– जो व्यक्ति अतिथि से पूर्व भोजन करता है, वह अपने घरों के इस्ट और पूर्त्त, दूध और रस, शक्ति और सम्पति, संतति और पशु तथा कीर्ति और यश को ही खा जाता है। व्यक्ति को समाज मे रहते हुए निज पुराषर्थ द्वारा उन्नति करने की शिक्षा काव्यमयी भाषा मे इस प्रकार दी गई है–

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनरसि। आप्नुहि श्रेयांसमंति समं क्राम। [10]

हे मनुष्य त, दूषक का दुषक, मादक का मादक और वज्र का वज्र है। तू बराबर वालों को पीछे छोडकर उनमे जा मिल जो तुझ से श्रेष्ठ है।
प्राचीन आर्य लोग सुखैषी गृहस्थ थे। साधू– सन्तो का सा तमोपय तथा अकिंचन जीवन उन्हे पसंद न था। व पुत्र पोत्रों के साथ घर मे आमोद– प्रमोद पूर्ण जीवनयापन का लक्ष्य अपने सम्मुख रखते थे। इसी कारण वैदिक साहित्य मे आर्थिक उपदेश इस प्रकार के उपलब्ध होते है यहां क्रम रहते हुए ही सौ वर्ष तक जीवन की इच्छा करो । सौ हाथों से कमाओं तथा हजार हाथों से दान– पूण्य करों। व वितैषी तो थे परतुं पैसा पुरूषार्थ से उपार्जित करने के पक्षपाति थे, जुए 15 या अनीति 16 से नही। उपार्जित धन का एकाकी उपभोग उनके मत मे नीति विरूद्व था, अतएव उन्होने ये कहा अकेला खाने वाला केवल पाप खाता है। व जीवन यात्रा मे जहॉ के तहॉ रहना उचित ने समझते थे और प्रगतिशील जीवन को ही सुनीति मानते थे – अपनी सी स्थिति वालों से आगे निकल जाओ तथा उन्नत लोगो से जा मिलो।
कृषिकर्म व पशुपालन आर्यो के प्रिय व्यवसाय होने के कारण वेद मन्त्रों मे पशुओ की प्राप्ति और रक्षा के लिए विषेश कामनाएँ था प्रार्थनाएँ की गई है। 10 गौ, घोडा, बैल आदि उपयोगी पशुओ के लिए विषेश प्रार्थनाएँ नही है, प्राणि – मात्र को मित्र की चक्षू से देखने की भावना तथा जीव रक्षा मे प्रमाद ने करने का उपदेश भी उपलब्ध होता है। परन्तु सिहं, सूअर, सर्प आदि घातक जीव– जन्तुओं के विनाश की प्रेरणाएँ भी विमान है।
वेद इस लोक को प्रियतम मानता है , दुःखों का घर नही। वह वार्द्वक्य से पूर्व मरने का निषेध तथा दीर्घ जीवन को हॅसते और नाचते हुए व्यतीत करने का विधान करता हॅ। पालक – पोषण होने के कारण भूमि और पर्जन्य हमारे माता– पिता है तथा उपकारक होने के कारण सूर्य, चन्द्र , जल आदि पदार्थ हमारे समान्वय है। वेद पुरूषार्थ का महत्तव यों प्रतिपादित करता है– जो परिश्रम नही करता, देवता उसे मित्र नही बनाते। हे मनुष्य तू उन्नुति के मार्ग पर अग्रसर हो, अवनति के पथ पर नही।
रस काव्य की आत्मा है। अतः सहद्वयों के हृदय मे रस का सचांर करने मे समर्थ रचना ही काव्य नाम की अधिकारिणी होती है। इस तुला पर तोलने से सहिंताओ के अधिकाशं नीति – मन्त्रों को, छन्दोबद्व होते हुए भी, काव्य मानना कठिन है। उनके श्रवण और अध्ययन से व्यवहार– सम्बन्धी ज्ञानवृद्वि तो होती है परतुं हृदय मे रसोद्रेक नही होता, कर्तव्य का मार्ग तो निर्दिष्ट हो जाता है परन्तु उस अलौकिक आनन्द की अनुभूति नही होती जिसमे मन विभोर हो उठे। तो भी यह नीरसता सार्वत्रिक नही है, कहीं न कहीं ऐसे भी मन्त्र दिखाई देते है जिन्हे पढकर हृदय एक या दूसरे रस या भाव मे लीन हो जाता है। प्रायः मनुष्य सम्पन्न होने पर इतना अभिमानी हो जाता
है कि विभिन्न व्यक्तियों की और आखॅ उठाकर देखने मे भी अपना अपमान मानता है। वेद लक्ष्मी की चचंलता दिखाकर गर्व के त्याग और उदारता के ग्रहण की यों प्रेरणा करता है–

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राधीयांसमनपश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ।।

धनाढ्य को याचकों की कामनाएँ पूर्ण करनी चाहिए। उसे मार्ग की दूरी पर दृष्टि रखनी चाहिए। धन तो रथ के चक्रो के समान घूमते रहते है। आज इसके यहां , कल उसके यहॉ।
वेद के उपदेश वैदिक भाषा मे है जो संस्कृत से भी प्राचीनतर है। वह सरल स्वाभिक भाषा है परन्तु उसकी स्वाभिकता मनु, याज्ञवल्क्य आदि की स्मृतियों की भाषा के तुल्य उबाने वाली नही है। वेद के नैतिक मन्त्रों मे कहीं– कहीं वह चमत्कार अनायास आ गया है, जिसे पर्वर्ती साहितय शास्त्रियों ने अलंकार नाम से अभिहित है।

सदर्न्भ सूचि

1. अथर्ववेद– 10/2/31
2. ऋग्वेद – 10/71
3. ऋग्वेद– 10/71/17
4. यजुर्वेद– 40/3
5. अथवर्वेद – 10/1/32
6. अथवर्वेद – 3/30/1–3
7. अथवर्वेद – 3/30/6
8. अथवर्वेद – 6/38/1–4
9. अथवर्वेद – 9/6/31–35
10. अथवर्वेद – 2/11/1
11. ऋग्वेद – 10/85/42
12. यजुर्वेद – 40/2
13. अथर्ववेद – 3/24/5
14. यजुर्वेद – 40/2
15. ऋग्वेद – 10/34/13
16. यजुर्वेद – 40/1
17. ऋग्वेद – 10/117/6
18. अथर्वेद – 2/11/4–5
19. यजुर्वेद – 1/1: 22/22
20. यजुर्वेद – 4/3/4
21. अथर्ववेद – 4/3/4
22. अथर्ववेद – 5/30/17
23. ऋग्वेद – 10/18/3
24. अथर्ववेद – 12/1/12
25. ऋग्वेद – 4/33/11
26. अथर्ववेद – 5/30/7
27. ऋग्वेद – 10/117/5